चौमासा

वर्ष-21 अंक -65
जुलाई - अक्टूबर, 2004

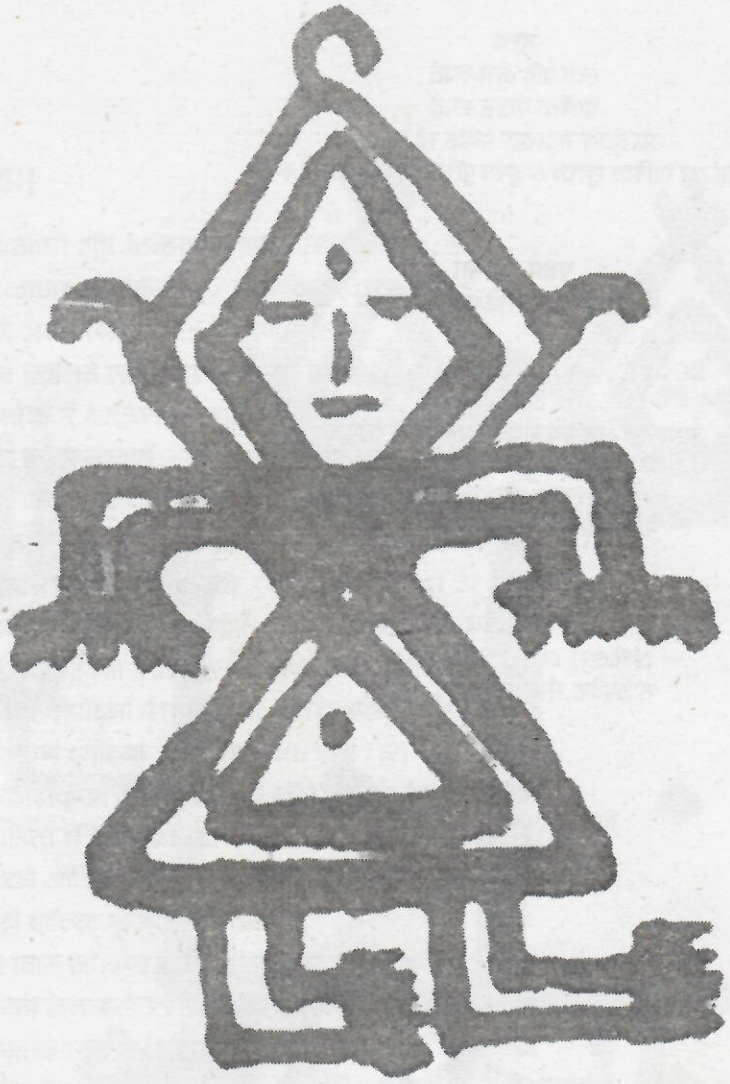

सम्पादक
डॉ. कपिल तिवारी

सहायक सम्पादक
अशोक मिश्र

आदिवासी लोक कला अकादमी,
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, भोपाल
का प्रकाशन

सुवागीत

डॉ. अनसूया अग्रवाल

लोक संस्कृति किसी देश की सही तस्वीर जानने का बुनियादी आधार है। बदलते जीवन मूल्य, बदली हुई मानसिकता और चित्तवृत्तियों का समावेश लोकसंस्कृति में बखूबी होता है। लोकसंस्कृतियों की अवधारणा लोकजीवन की सांस्कृतिक परम्पराओं और रीतियों पर निर्मित होती है इसलिए जन धारणा है कि लोकसंस्कृति से शहरी नहीं गाँव की संस्कृति का बोध होता है। राहुल सांस्कृत्यायन भी मानते हैं-'लोकसंस्कृति अपने शुद्ध रूप में गाँवों में विराजती है, नगर में उसका विद्रूप रूप ही देखा जा सकता है।' (राहुल निबंधावली-पृ. 10) यही कारण है कि प्रचलित लोककाव्य, लोकनाट्य, लोकगाथाएँ और लोक गीतों का जैसा समृद्ध रूप ग्रामीण जन में प्रचलित, उपलब्ध और लोकप्रिय है शहरों में नहीं है।

लोकसंस्कृति की सर्जनात्मकता का एक सुखद पक्ष उत्सवधर्मिता है। अभावों में पलता-बढ़ता, जीवन-यापन करता, पीड़ाओं को सहता, भोगता छत्तीसगढ़ की अमीर धरती का गरीब जन, अत्यंत प्रसन्न आल्हादित मन से व्रत-कथाओं, स्नान पर्वों, पूजा-पाठ, त्यौहार-वार में अपनी भागीदारी सुनिश्चित करता है, सच तो यह है कि जीवन के सुख, जीवन के दु:ख, जीवन की पीड़ा आदि से ही इन आस्थाओं और विश्वासों का जन्म होता है और लोक गीतों के बीजों का अंकुरण भी।

छत्तीसगढ़ में लोकगीतों की समृद्ध परम्परा रही है। पर्वों और त्यौहारों के अवसर पर गीतों का यह झरना झर-झर कर जन-जीवन में झरने लगता है। इनकी मुग्धकारी तान सुनते ही लोगों का अंत:करण अलौकिक अनुभूति से भर उठता है।

ये लोकगीत छत्तीसगढ़ की लोक संस्कृति के मूलाधार हैं। इन लोक गीतों में श्रम, प्रकृति, सत्य, प्रेम, शृंगार, करुणा आदि भावों की बड़ी सुंदर अभिव्यक्ति होती है। ये लोकगीत छत्तीसगढ़ की संस्कृति के बोलते चित्र हैं। यदि छत्तीसगढ़ की सही तस्वीर को जानना हो तो लोकगीतों को जान लेना चाहिए।

छत्तीसगढ़ के लोकगीतों में 'सुवागीत' का विशिष्ट स्थान है। छत्तीसगढ़ के नारियों के कंठ से नि:सृत नारी दर्शन है-'सुवागीत' जिसमें

समग्र छत्तीसगढ़ी नारियों का सुख-दुख, हर्ष-विषाद, व्यथा-कथा अभिव्यंजित है। असंख्य नारियों के हृदय की झंकार का ताना-बाना यह 'सुवागीत' करूण, हास्य और श्रृंगार रस में लिपटा सामूहिक नृत्य गीत है। इस नृत्य-गीत को सधवा (विवाहिता), विधवा या कुमारियाँ सभी गा सकती हैं।

छत्तीसगढ़ अंचल में यह नृत्य-गीत कार्तिक मास के कृष्णपक्ष से प्रारंभ होता है। नारियाँ मिट्टी से बनी सुवा (तोता) की दो प्रतिमाएँ, धानवाली टोकरी में रखकर घर-घर जाती हैं और सबसे सामूहिक रूप में 'छेरी के छेरा छेर बरकिन छेरा-छेरा' कहती हैं, फिर सुवागीत गाती हैं।

मिट्टी के इन तोतों को वे भलीभाँति सजाती भी हैं क्योंकि ये क्रमशः महादेव और पार्वती के प्रतीक माने जाते हैं। फिर टोकरी को लाल रंग के वस्त्र से ढक देती हैं। जब ये सुवा नर्तन के लिए निकलती हैं तो गाँव के किसी घर-आँगन में पहुँचकर, टोकरी को बीच में रखकर उसके चारों ओर मंडलाकार खड़ी हो जाती हैं। नाचते समय टोकरी के लाल कपड़े को तनिक इस तरह हटा देती हैं कि सुग्गे (तोते) झाँकते हुए से प्रतीत होते हैं।

सुवागीत नृत्य में स्त्रियाँ समवेत स्वर में गाती हुई, झुककर एक बार दाहिनी ओर तथा दूसरी बार बायीं ओर ताली बजाती हुई नृत्य करती हैं। साथ ही उसी ताल में वे अपना दाहिना तथा बायाँ पैर भी उठा-उठाकर रखती हैं। यह तोते की चाल की नकल प्रतीत होती है।

'सुवागीत' 'तरी हरी ना ना' के धुन से प्रारंभ होता है। गीत के हर टेक में 'सुवा' को संबंधित किया जाता है। दरअसल प्राचीन काल से न केवल लोकसाहित्य में अपितु शिष्टसाहित्य में भी सुवा को वियोग तथा वियोगिनी के संदेशों को एक-दूसरे तक पहुँचाने वाला संदेशवाहक के रूप में चित्रित किया गया है। दूसरी बात पालतू तथा बुद्धिमान पक्षी तोता मनुष्य की बोली समझ सकता है, ग्रहण कर सकता है और उसकी नकल भी कर सकता है, संभवतः इन्हीं गुणों के कारण उसे यह कार्य सौंपा गया है। प्रतीकात्मक रूप में विचार करने पर लगता है कि शायद इसलिए इस 'सुवा' के माध्यम से ही स्त्रियाँ अपनी व्यथा शिव-पार्वती तक पहुँचाती हैं।

इस नृत्य-गीत में इधर सुवा पींजरबद्ध होता है तो उधर चहार-दीवारी में छत्तीसगढ़ की नारियाँ कैद होती हैं। इधर सुग्गा लाल व हरे रंग से रंजित होता है तो उधर छत्तीसगढ़ की नारियाँ हरी साड़ी और लाल चोली में सज्जित होती हैं। इधर सुवा को जो सिखाया जाता है वही बार-बार वो दुहराता है, उधर नारियाँ भी स्वतंत्र रूप से अपनी बात नहीं कह पातीं।

दोनों के जीवन में साम्य है। 'सुवा' को सम्बोधित करने के बहाने मानों एक सखी, दूसरी सखी के पास अपने प्राणों की दुखांत वेदना को अभिव्यक्त करती है। इन गीतों में भावना का वेग इतना अधिक होता है कि हृदय द्रवीभूत हो जाता है। बड़ी से बड़ी बात की उलाहना देने और नाराजगी जाहिर करने में सुवागीत ने छत्तीसगढ़ की नारीजाति की बड़ी मदद की है। हृदय में लगी ठेस, पीड़ा, दुःख को, जिन्हें कई कारणों से यहाँ की नारियाँ अपनी जुबान पर नहीं ला पातीं उन्हें गीतों की लड़ियों में पिरोकर, डंके की चोट पर गा-गाकर समाज को उद्वेलित कर देती हैं, यही इन सुवागीतों का कमाल है।

एक सुवा लोकगीत में-छत्तीसगढ़ की नारियों के जीवन में आँसुओं की कितनी बाढ़े हैं, विवशताओं और दुःखों के कितने सागर हैं, अंधकार की कैसी गहन सीमा रेखाएँ हैं.....बाध्य होकर वह अपने भाग्य नियंता से गुहार (पुकार) कर उठती है कि मुझे स्त्री रूप में जन्म फिर कभी मत देना.....

तरी हरी ना ना कि नहा नारी ना ना रे सुवा न
तिरिया जनम झन दे॥
रे सुवा न तिरिया.....
बिनती करंव मै चंदा सुरूज के रे सुवा न
तिरिया जनम.....
सास मोला मारही, ननद गारी देही रे सुवा न
तिरिया जनम.....
बिनती करंव मै दुरगा अऊ लक्ष्मी के रे सुवा न
तिरिया जनम झन दे
रे सुवा न तिरिया जनम.....

सामान्यतः सुवा गीत करुण रस प्रधान होते हैं किन्तु कुछ गीतों में श्रृंगार और हास्य की भी प्रधानता होती है। खुशी के अवसर पर मिट्टी द्वारा विर्निमित सुग्गे को टोकरी में रखकर, प्रतिष्ठित कर, यहाँ की नारियाँ 'सुवा' की तरह फुदकने भी लगती हैं। कुछ सुवागीतों में प्राकृतिक सौन्दर्य की झलक भी दिखाई देती है। आधुनिक कवियों के द्वारा रचित सुवागीतों में अब राष्ट्रप्रेम की भावना के भी दर्शन होते हैं-

तरी हरी ना ना कि नहा नरी ना ना रे सुवा न
चल जाबो देखे ल झंडा तिरंगा रे सुवा न
मोर पाये हे देस सुराज
रे सुवा न.....

यूँ तो सुवागीत सामूहिक स्वर में ही गाया जाता है किंतु कभी-कभी नृत्य दल दो समूह में बँट जाता है जिसमें एक दल प्रश्न करता है और दूसरा उत्तर देता है। नृत्य गीत समाप्त होने पर घर से इन्हें भिक्षा के रूप में चावल, तेल, पईसा, धान, कोदो, कुटकी, आटा आदि मिलता है। फिर ये दूसरे घर जा पहुँचती हैं। सामान्यतः यह टोली अपने ही

गाँव के घर-घर में घूमती है किंतु इच्छा और सुविधा अनुसार ये एक गाँव से दूसरे गाँव भी जाने को स्वतंत्र होती हैं, इस तरह का कोई बंधन नहीं होता।

यह नृत्य-गीत लगभग पन्द्रह दिनों तक चलता है। पंद्रह दिनों में ये टोलियाँ प्रचुर मात्रा में सामग्री एकत्रित कर लेती हैं और इसी एकत्रित सामग्री और संपत्ति से वे दीवाली की रात को गौरा-गौरी (शिव-पार्वती) विवाह का आयोजन करती हैं।

इन सुवा नृत्य गीतों की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि इनमें किसी वाद्य यंत्र का प्रयोग नहीं होता। हाथ से बजाने वाली ताली ही बकौल वाद्ययंत्र इसमें प्रयुक्त होता है।

सचमुच छत्तीसगढ़ के सुवागीतों में यहाँ की नारियों की आत्मा स्पंदित होती है। एक ओर इन सुवागीतों में छत्तीसगढ़ की संस्कृति की स्पष्ट झलक दिखाई देती है तो दूसरी ओर यहाँ की नारियों की मधुर, कोमल और कारूणिक भावनाओं की स्पष्ट अनुगूँज सुनाई देती है। नारी हृदय से निकली ये उन्मुक्त भावनाएँ हर अंतस को भिगोने में समर्थ हैं, इसमें संदेह नहीं।